शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 14
Issue 1&2
151July 2023

संस्कृतियों में सामन्जस्य हेतु अन्तर्द्वन्द-एक प्रयास

बीज शब्द :

मेरा परम सौभाग्य कि हिन्दी भाषा की अत्यन्त परिपक्व लेखिका सूर्यबाला जी की पुस्तक "अलविदा अन्ना" को पढ़ने का मुझे सुअवसर मिला। लेखिका सूर्यबाला जी के विदेश प्रवास के दौरान हुए अनुभव, जो कि उनके नितान्त व्यक्तिगत अनुभव थे, उन्हें, जिस सहजता और सजीवता के साथ किसी चलचित्र की भाँति हम पाठकों के सम्मुख उन्होंने प्रस्तुत किया, वह अपने आप में आश्चर्यजनक एवं प्रशंसनीय है। यह लेखिका जी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण तो उजागर करता ही है, साथ ही उनके सरल, सहनशील और गम्भीर व्यक्तित्व का परिचय भी कराता है।

*****

दीप्ति सक्सेना
असिस्टेंट प्रोफेसर
चित्रकला विभाग
डी0ए-वी0 कालेज, कानपुर-208001

संस्कृतियों में सामन्जस्य हेतु अन्तर्द्वन्द-एक प्रयास

लेखक	सूर्यबाला
ISBN	9789380823935
Language	Hindi
Publisher	Prabhat Prakashan
Edition 1st	Publication Year 2013

भारतीय नारी, वह भी ऐसी जो अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति सम्मान और गर्व से सराबोर है, अपने बच्चों से मिलने की उत्कट अभिलाषा लिए हजारों मील का रास्ता तय करके अमेरिका पहुँच जाती है। किन्तु अपने समाज के रिश्तों की अहमियत, अपनत्व और सम्मान के विपरीत विदेशी समाज में पली-पुसी अपनी पोती द्वारा किया गया स्वार्थपूर्ण, उपेक्षित एवं वैयक्तिकता से भरा रूखा एवं औपचारिक व्यवहार उन्हें भीतर तक आहत कर देता है। फिर भी स्वयं को संयत करते हुए, सहजता का अभिनय करते हुए, असहजता को सतह तक न आने देते हुए, तत्क्षण, उसे वास्तविक भारतीय पोती बनाने का संकल्प लेने जैसे चुनौतीपूर्ण कार्य को सफलता के शिखर तक पहुँचाते हुए न केवल एक जोखिम भरे प्रयास में लिप्त हुईं, बल्कि लेखिका ने असीम धैर्य, जुझारुपन और आत्मविश्वास का उदाहरण भी प्रस्तुत किया। उनकी यह चेष्टा, एक भारतीय माता-पिता की सन्तान को, जिसकी जड़ें उनकी जन्मस्थली से बहुत दूर एक दूसरी दुनिया में जमीं हैं, अपनी संस्कृति के प्रति चैतन्य करना, उसकी मूल भावना से उसे अवगत कराना, उसके प्रति हीनता की भावना से उबार कर न केवल उस बच्ची को बल्कि बच्ची के माध्यम से विदेशी संस्कृति एवं मूल के बच्चों में भी जिज्ञासा एवं सम्मान दिलाना बहुत गहराई तक मन को आन्दोलित कर जाता है। किन्तु दूसरी ओर यह भी सत्य है कि खून अपना असर दिखाता अवश्य है। इसी कारण भावनाओं को चतुराईपूर्वक छेड़ने के जानबूझकर किये गये लेखिका के प्रयोग सफलता के मुकाम तक अपेक्षाकृत शीघ्र पहुँच पाये। रिश्तों के महत्व को नकारने की प्रवृत्ति, अहम् की भावना, आत्म-केन्द्रित हो एकाकीपन में डूबे रहने की प्रवृत्ति और भी न जाने कौन-कौन सी विदेशी संस्कृति की विशेषताओं के, पोती पर चढे रंग को फीका करने के लिये अपनी देशी संस्कृति और धर्म के महान चरित्रों के जीवन-गाथाओं की लेखिका द्वारा योजनाबद्ध प्रस्तुतियों ने उसके बालमन पर ऐसा गहरा प्रभाव डाला कि ये चरित्र अन्जाने ही उसके "नोबुल गाइज" और "ब्रेव गाइज" की उपाधियों से विभूषित हो गये।

लेखिका सूर्यबाला जी के हिन्दी भाषा और साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति का वैश्विक स्तर पर प्रचार करना और उसकी समृद्धिशालिता से विश्व को अवगत कराने जैसे पवित्र कार्य से भी मेरा मन उनके प्रति असीम आदर से भर उठा। हिन्दी साहित्य के माध्यम से समकालीन वैश्विक समाज की गुमराह होती जा रही युवा पीढ़ी तथा स्वयं की अलग पहचान बनाने के लिये मीडिया के हाथों की कठपुतली तक बन जाने को विकल होती हुई युवतियों जैसी गम्भीर समस्याओं का समाधान तलाशने का प्रयास किया गया है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी खूबी "संयुक्त परिवार की परम्परा" के कारण ही विश्व स्तर पर उसकी अलग पहचान है। और यह विडम्बना ही है कि जिस खूबी के कारण पश्चिमी देशों में हमारे देश का सम्मान है उसी को नकारते हुये, हीन समझते हुये, हम उनकी सभ्यता का अन्धानुकरण कर स्वयं को आधुनिक कहलाना चाह रहे हैं। "एकल परिवार" के जिन गम्भीर परिणामों को पश्चिमी देश अन्जाने भुगत चुके हैं और हमारी संस्कृति की अहमियत समझ उसकी ओर उन्मुख हो,

सम्मान कर रहे हैं, हम जान-बूझकर स्वयं को हीन मानते हुये, उनके कटु अनुभवों से सीख न लेते हुये, अपने निर्बल हो चुके बुजुर्गों को असहाय और अकेला छोड़, निरंकुश रहने की लालसा लिए एकल परिवार की ओर आकृष्ट होते जा रहे हैं। संस्कृति, संस्कारों से निर्मित होती है। संस्कार, अनुभवों की ऊष्मा में तपकर निखरते हैं। अनुभव, परिवार के बुजुर्गों से प्राप्त होते हैं और बुजुर्ग, जो परम्परा और संस्कृति के वाहक होते हैं, उन्हें पश्चिमी सभ्यता के अंगीकरण ने परिवारों से बाहर, वृद्धाश्रम चले जाने को विवश कर दिया है। परिवारों में बुजुर्गों की अनुपस्थिति बचपन को संस्कारविहीन बनाती जा रही है। बच्चों में नैतिक मूल्यों, सामान्य शिष्टाचार, सहयोग, आदरभाव, सदाचार, साझेदारी, सच्चाई इत्यादि गुणों का विकास इसी कारण बाधित होता जा रहा है। यह अत्यन्त दु:ख का विषय है कि आज हमारे समाज में मदर्स डे, फादर्स डे, वैलेन्टाइन डे और भी न जाने कौन-कौन से डेज मनाने की परम्परा चल पड़ी है, जबकि ये दिवस वास्तव में भारतीय संस्कृति में मनाये जाने के उपयुक्त ही नहीं हैं क्योंकि हमारे माता-पिता हमारे साथ संयुक्त परिवार में रहते हैं। उनके आशीर्वाद से हमारे दिन का शुभारम्भ होता है। अत: हमारा प्रत्येक दिवस ही मदर्स डे और फादर्स डे होता है। ये तो उन देशों की संस्कृतियों के अनुकूल होने के साथ-साथ यथोचित भी है जहाँ वे आपस में, वर्ष में, तय दिवस पर, सिर्फ एक बार ही याद किये जाते हैं।

लेखिका जी की पोती अन्ना भी दुर्भाग्यवश एकल परिवार की सदस्या होने के कारण संस्कारविहीन एवं उच्छृखंल बनती जा रही थी, जिसपर विदेशी संस्कृति का प्रभाव पूरी तरह से हावी था। तीन सदस्यीय परिवार में सभी अपने-अपने क्रिया कलापों में व्यस्त थे। तभी तो वह आत्म-केन्द्रित, मितभाषी और शेयरिंग की क्षमता से कोसों दूर थी। किन्तु दादा-दादी के आगमन पर उनकी संगति और प्यार-दुलार में उसके जीवन में एक समय ऐसा भी आया कि अपनी अमेरिकन फ्रेन्ड्ज हैली, मैरी, एन और लिज के घर आने पर शिष्टाचार का पालन करते हुये, दादा-दादी को हैलो कहलाने के साथ-साथ 'बा' को भी नमस्ते करवाना नहीं भूली। इतना ही नहीं हिन्दी से प्रभावित होकर वर्णमाला तो वर्णमाला, उसने संस्कृत के श्लोक तक, शुद्ध उच्चारण के साथ, सस्वर, कंठस्थ ही नहीं किये, अपितु बेझिझक और पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ अमेरिकी टी0 वी0 चौनल के लिये उनकी रिकॉर्डिंग तक करवा डाली। अन्ना के व्यक्तित्व में आया यह सकारात्मक परिवर्तन दादा-दादी के अस्तित्व, उपस्थिति एवं आवश्यकता का अहसास कराता है और सिद्ध करता है कि समाज में बढ़ते अपराधों के प्रमुख कारणों में से एक कारण, एकल परिवारों का चलन भी हैं। परिवार कें बच्चों की सीमित संख्या से रिश्ते समाप्ति के कगार पर पहुँच चुके हैं। रिश्तों में गरिमा एवं मर्यादा के अभाव का श्रेय भी संस्कारों की व्यवहार में अनुपस्थिति है। आवश्यकता है सच्चाई, कर्तव्यपरायणता, ईमानदारी और श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों को आत्मसात करने की। एक भारतीय नारी सामाजिक सरोकारों के प्रति निष्ठापूर्वक प्रतिबद्ध होती है, जो परिवारों को बाँधकर रखती है। लेखिका जी का भी मानना है कि यदि समय रहते जाग्रत होकर हम भौतिक एवं मशीनी संस्कृति को त्याज्यकर, संस्कारों की आधारशिला मानवता के उषाकाल में रख पाये तभी उसका उज्जवल एवं उत्कृष्ट चरित्र, एक चरित्रवान समाज के रूप में परिणित हो पायेगा, जो आवश्यक भी है और यथोचित भी। जब यह नारी 'वसुधा' के समान सक्षम होकर पति 'अरुण वर्मा' का सम्बल बन उसको उसूलों के निर्वहन के लिये प्रेरित करने की सामर्थ्य रख सकती है, तब स्वयं के अस्तित्व की शक्ति बनना उसके लिये क्या मुश्किल है ? परिवार में रिश्तों की डोर से उपजा विश्वास भारतीय नारी को बाहरी दुनिया से बेखौफ, सुरक्षित और निश्चिन्त बना देता है, जिससे वह स्वयं के प्रति लापरवाह हो जाती है, क्योंकि वह यह मानकर चलती है कि परिवार में सभी अपने-अपने दायित्व एवं दायरे की मर्यादा ईमानदारी के साथ निबाहेंगे। किन्तु, स्वार्थपरता से भरे आधुनिक समाज का सदस्य नेत्रहीन और संवेदनहीन हो चुका है, जो दायरों का अतिक्रमण करने लगा है। लेखिका जी भी स्वीकारती हैं कि नारी सदियों से पुरुष को 'सब कुछ लेने' देती चली आयी है, ऐसे में नारी की वाजिब माँग भी हद से ज्यादा प्रतीत होती है। सम्भवत: यही वर्तमान समाज का चरित्र बन चुका हैं। मेरे दृष्टिकोण से, जब समाज में स्त्री-पुरुष के मध्य आदान-प्रदान में सन्तुलन स्थापित होगा, समस्या के निदान की भूमिका भी तभी आकार ले सकेगी।